# अब किसान बना राजनीति का मोहरा

**मनोज कुमार झा/वीणा भाटिया**

**कांग्रेस के अलावा जब भाजपा सत्ता में थी, उस दौरान भी किसानों की आत्महत्या का सिलसिला ज़ारी था, पर सरकार ने कभी इस पर ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी। हां, महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव प्रचार के दौरान नरेन्द्र मोदी ने विदर्भ में किसानों की आत्महत्या का मुद्दा जोर-शोर से उठाया और इसके लिये पूर्ववर्ती यूपीए सरकार को जिम्मेदार ठहराने की कोशिश की। उन्होंने खूब घड़ियाली आंसू बहाए, लेकिन जब वे गुजरात के मुख्यमंत्री थे, तब भी किसान वहां आत्महत्या कर रहे थे।**

मोदी सरकार द्वारा लाए गए भूमि अधिग्रहण कानून का चौतरफ़ा विरोध होने के साथ ही किसानों का मुद्दा अब राजनीति के केन्द्र में आ गया है। तमाम दल अब किसानों को मोहरा बना कर राजनीतिक लाभ उठाने की कोशिश में लग गए हैं। उल्लेखनीय है कि हाल के दिनों में किसानों की आत्महत्या के मामले बढे हैं और इसे मोदी सरकार के भूमि अधिग्रहण क़ानून से जोड़ कर देखा जा रहा है। किसानों की आत्महत्या के मामले खासकर उन इलाकों से भी आने लगे, जहां पहले किसान शायद ही आत्महत्या करते थे। इसके बाद नेताओं के जैसे बयान आए, वो भी असंवेदनशीलता की पराकाष्ठा माने गए। सबसे बड़ी ट्रैजिडी तो तब हुई जब दिल्ली के मुख्यमंत्री ने भूमि अधिग्रहण क़ानून के खिलाफ़ जंतर-मंतर पर रैली बुलाई और उस रैली में हज़ारों की भीड़, पुलिस और मीडियाकर्मियों की मौजूदगी में राजस्थान से आए एक किसान ने पेड़ पर फ़ांसी लगा ली। असंवेदनशीलता की हद ये थी कि किसान के फ़ांसी के फंदे पर झूल जाने के बाद भी आम आदमी पार्टी के नेताओं ने अपने भाषण जारी रखे। किसी ने किसान को आत्महत्या करने से रोकने की कोशिश नहीं की। कहा जा रहा है कि आम आदमी पार्टी ने यह एक ड्रामा रचा था कि उक्त किसान फ़ांसी लगाने का नाटक करे। उसे बचा लिया जायेगा और सरेआम फ़ासी लगाने के उसके प्रयास को भुना कर राजनीतिक फ़ायदा उठाया जायेगा। यह भी कहा जा रहा है कि उसे आम आदमी पार्टी में शामिल करने की बात चल रही थी और कहा गया था कि उसके ऐसा करने से वह मीडिया की चर्चा में आकर लोकप्रिय हो जाएगा। यह बात भी सामने आ रही है कि दिल्ली के उपमुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया ने उसे खास तौर पर बुलाया था। पर आम आदमी पार्टी का यह ड्रामा हक़ीक़त में बदल गया और उसका दांव उलटा पड़ गया। ड्रामेबाज़ आम आदमी पार्टी के नेताओं के लिय ऐसा कुचक्र रचना स्वाभाविक माना जा रहा है। बाद में आम आदमी पार्टी के नेता राजस्थान के दौसा स्थित उस किसान गजेन्द्र के घर गए। परिजनों को भारीभरक मुआवज़ा दिया। उसे शहीद का दर्ज़ा देने की घोषणा की। यही नहीं, यह भी कहा कि उसका मंदिर भी बनाया जाएगा। इससे यह बात सामने आ गई कि वाकई यह ड्रामा ही था, क्योकि गजेन्द्र की माली हालत ऐसी नहीं थी कि उसे आत्महत्या करने को विवश होना पड़े। पहले भी वह समाजवादी पार्टी का कार्यकर्ता था।

बहरहाल, इससे यह समझा जा सकता है कि किसानों के मुद्दे पर नेताओं का रवैया क्या है और वे किस हद तक असंवेदनशील हो चुके हैं। अब कांग्रेस ने किसानों के मुद्दे को ज़ोर-शोर से उठाना शुरू किया है। लंबे समय तक अज्ञातवास में रहने के बाद जब कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गांधी देश लौटे तो उन्होंने इस मुद्दे को लपक लिया। कांग्रेस को लगता है कि इस मुद्दे को उठा कर वह फ़िर से अपनी खोई हुई राजनीतिक ज़मीन हासिल कर सकती है। पर भूलना नहीं होगा कि इस देश पर सबसे लंबे समय तक कांग्रेस ने ही राज किया है और किसानों की आज जो ये हालत हुई है, कोई एक दिन में नहीं हुई है। एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसमें किसान दिन-ब-दिन वंचित और लाचार होता गया है। ये अलग बात है कि मोदी सरकार ने जो नया भूमि अधिग्रहण क़ानून बनाया है, वह उस क़ानून से ज़रा भी कम नहीं जो अंग्रेजों का क़ानून था।

इस क़ानून के तहत किसानों से ज़मीन छीन ली जायेगी और वे कुछ नहीं कर सकेंगे। किसानों के जिस निर्मम शोषण की शुरूआत अंग्रेजों ने की थी, उसे सवतंत्र भारत की सरकारों ने कम करने की जगह आगे ही बढाया है और जब से अर्थव्यवस्था को खुला छोड़ दिया गया, किसानों की हालत और भी ज़्यादा खराब होने लगी। नरसिंहा राव की सरकार के दौरान विदेशी खाद-बीज और कीटनाशक कंपनियों के हित के लिये किसानों की बलि चढाने की योजना की विधिवत शुरुआत हुई। इसके बाद तो देश में किसानों की आत्महत्या का वो सिलसिला शुरू हुआ, जैसा पूरी दुनिया में पहले कभी देखा-सुना नहीं गया। महाराष्ट्र के विदर्भ, आंध्र प्रदेश, पंजाब और देश के दूसरे इलाकों में पिछले 20 वर्षों में 20 से 30 लाख किसानों ने आत्महत्या की। वैसे, सरकारें यह आंकड़ा चार-पांच लाख ही बताती है। अगर सरकारी आंकड़ों को ही सही माना जाय तो आज के समय में दुनिया में किसानों द्वारा आत्महत्या की यह संख्या वाकई किसी भी सरकार के लिये शर्म की बात होने के साथ उन्हें अपराधी ठहराने के लिये काफ़ी है। पर इस देश की सरकार किसानों की कोई जिम्मेदारी नहीं लेती। वह मुआवज़ा देने पर यक़ीन करती है, पर मौत का मुआवज़ा क्या हो सकता है। भूलना नहीं होगा कि चंद साल पहले तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह जब आत्महत्या करने वाले किसानों के परिजनों को मुआवज़ा देने के लिए विदर्भ गए थे, तो लोगों ने मुआवज़ा लेने से इन्कार कर दिया था। मनमोहन सरकार में कृषि मंत्री रहे शरद पवार ने किसानों की आत्महत्या पर बहुत ही असंवेदनशील बयान दिए थे और इसके लिये सरकार को ज़िम्मेदार मानने से इन्कार कर दिया था। कहने का मतलब वर्तमान भाजपा सरकार हो, या पूर्व की कांग्रेस सरकार, सभी ने किसानों के साथ नाइंसाफ़ी की है। यद्यपि देश में 60 फ़ीसद लोग खेती-किसानी पर आधारित हैं, लेकिन समाज में हाशिए पर पड़े हैं। औपनिवेशिक दौर से लेकर आज तक उनके शोषण-उत्पीड़न का सिलसिला ज़ारी है। ये अलग बात है कि वर्तमान मोदी सरकार देशी-विदेशी पूंजीपतियों के फ़ायदे के लिए अब उन पर और भी जुल्म ढाने जा रही है।

कांग्रेस के अलावा जब भाजपा सत्ता में थी, उस दौरान भी किसानों की आत्महत्या का सिलसिला ज़ारी था, पर सरकार ने कभी इस पर ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी। हां, महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव प्रचार के दौरान नरेन्द्र मोदी ने विदर्भ में किसानों की आत्महत्या का मुद्दा जोर-शोर से उठाया और इसके लिये पूर्ववर्ती यूपीए सरकार को जिम्मेदार ठहराने की कोशिश की। उन्होंने खूब घड़ियाली आंसू बहाए, लेकिन जब वे गुजरात के मुख्यमंत्री थे, तब भी किसान वहां आत्महत्या कर रहे थे।

कांग्रेस के शासन के दौरान ही स्पेशल इकोनॉमिक जोन (सेज) की शुरुआत की गई और इस नाम पर किसानों से जबरन ज़मीनें छीनी गई। यह पूरे देश में हुआ। बंगाल से लेकर गुजरात तक। बंगाल में वाममोर्चा सरकार ने इसे लागू किया। इसके ख़िलाफ़ नंदीग्राम और सिंगूर में ज़ोरदार संघर्ष चला और ये मामला इतना आगे बढ गया कि टाटा को सिंगूर से जाना पड़ा। तब नरेन्द्र मोदी ने ही इन्हें नैनो प्रोजेक्ट के लिए गुजरात में ज़मीन मुहैया कराई। इससे ज़ाहिर हो जाता है कि वामपंथी भी किसानों के हितैषी नहीं हैं। वे भी पूंजीपतियों के हितों के ही पोषक हैं। उल्लेखनीय है कि वामपंथियों से पश्चिम बंगाल में सत्ता छिन जाने के पीछे सिंगूर और नंदीग्राम का संघर्ष एक बड़ा कारण रहा है।

इसी तरह किसी भी पार्टी की सरकार रही हो, केन्द्र में या राज्यों में, किसानों के हितों के ख़िलाफ़ ही रही हैं। सभी पार्टियों ने किसानों का सिर्फ़ वोटबैंक के रूप में ही इस्तेमाल किया है और आगे भी उनका मकसद यही है। आज कांग्रेस अगर किसानों के मुद्दे पर राजनीति कर अपनी छवि बेहतर बनाना चाहती है, तो उसे अपने अतीत में झांकना चाहिए।

किसानों की आत्महत्याओं के पीछे सबसे बड़ा कारण है उनका कर्ज़ के बोझ तले दब जाना। फ़सल का मारा जाना या फ़सल का बाज़ार में वो दाम नहीं मिल पाना कि जिससे कि उनकी लागत भी निकल जाए। खास बात ये है उन्हीं इलाकों में ज़्यादा संख्या में किसान आत्महत्या करते रहे हैं, जहां खोती का व्यवसायीकरण हुआ है। जहां खेती बाजार के लिए की जा रही है और व्यावसायिक फ़सलों के लिये उन्हें बड़े पैमानों पर कर्ज़ लेना पड़ता है। एक बार जब कर्ज़ के दुष्चक्र में किसान पड़ जाता है, तो उससे निकल पाना उसके लिये बहुत ही मुश्किल हो जाता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बीज़, खाद और पेस्टिसाइड्स से किसानों का काफ़ी नुकसान हुआ है, लेकिन इन कंपनियों के मुनाफ़े पर कोई असर न पड़े, इसलिए सरकारें उन्हें हर तरह की छूट देती रही हैं। दूसरी तरफ़ बाजार में बिचौलियों की मौजूदगी के कारण किसानों को उनकी फ़सल का कभी वाजिब दाम नहीं मिल पाता। खेती लगातार किसानों के लिये घाटे का सौदा बनी रही है। कई सर्वे से यह ज़ाहिर होता रहा है कि किसान खेती छोड़कर दूसरा धंधा अपनाना चाहते हैं, पर विकल्प नहीं मिल पाने के कारण इस आत्मघाती पेशे को छोड़ नहीं पा रहे।

खेती का संकट अब इतना बढ गया है कि वे किसान भी आत्महत्या करने को मजबूर हो रहे हैं, जो व्यावसायिक खेती नहीं करते। वे सिर्फ़ पेट भरने के लिये खेती करते हैं। अब उनके लिए भी खेती जारी रख पाना मुश्किल हो रहा है। इसलिए बड़ी तेज़ी से छोटे किसान खेती छोड़कर महानगरों में पलायन करने को मजबूर हो रहे हैं और वहां मज़दूरी करना ज़्यादा बेहतर समझ रहे हैं। हाल के वर्षों में गांवों से महानगरों में जो पलायन हो रहा है, उसकी मुख्य वजह यही है।

वर्तमान व्यवस्था में कोई भी पार्टी किसानों को राहत दे सकेगी, यह मुमकिन नहीं लगता, क्योंकि साम्राजी पूंजीशाही के इस दौर में ऐसा कोई विकल्प ही नज़र नहीं आता। देहातों से खेती पर आधारित आबादी का उजड़ना तय है और यह प्रक्रिया जारी भी है। बहुत से ऐसे राज्य हैं, जहां पूंजीवादी भूमिसुधार तकलागू नहीं किए जा सके। कई राज्यों में भूस्वामियों के पास अभी भी हज़ारों एकड़ ज़मीन है। ये सत्ता में भागीदारी करते हैं और अपनी ज़मीन पर से कब्ज़ा छोड़ने को तैयार नहीं। जब ये सरकारों में शामिल हैं तो इनसे ज़मीन कौन छीनेगा? ज़मीन तो ग़रीब किसानों की ही छीनी जायेगी। मोदी 'मन की बात' कर किसानों को बरगलाना चाहते हैं, वहीं दूसरे दल उनके मुद्दे पर राजनीति कर सत्ता में वापसी करना चाहते हैं। वास्तविकता ये है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में किसानों के लिए जगह नहीं रह गई है। जगह बस इतनी है कि वे मर-खप कर अमीरों का पेट भरें और ख़ुद भूखे रह कर जान दे दें। लेकिन यह एक ऐसा अंतर्विरोध है जो वर्तमान व्यवस्था के लिए ही संकट पैदा करने जा रहा है। किसान संगठन अमीर किसानों और भूस्वामियों के हाथों में हैं। ग़रीब किसान अलग से कोई आंदोलन चलाने की स्थिति में नहीं हैं।

किसानों की समस्या का समाधान इस व्यवस्था में है ही नहीं। इस व्यवस्था में उनके लिए सिर्फ़ भूख, कर्ज़ और फ़िर इन समस्याओं से मुक्ति के लिए एकमात्र रास्ता आत्महत्या ही है। जब तक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन के लिए संघर्ष की शुरूआत नहीं होती, किसानों की आत्महत्याओं का सिलसिला रुकने वाला नहीं।

# सोनभद्र औद्योगिक क्षेत्र: विकास का दंश

**सोनभद्र जिले** के इर्द-गिर्द 7000 वर्ग किलोमीटर में फैला औद्योगिक इलाका देश का सबसे बड़ा ऊर्जा उत्पादन केन्द्र माना जाता है। देश भर में जितना तापविद्युत उत्पादन होता है उसका 10 प्रतिशत यानी 11,000 मेगावाट बिजली इसी इलाके में पैदा होती है।

विकास योजनाओं ने इस इलाके के हवा-पानी में जहर घोल दिया है। अनुवांशिक बीमारियों, शिशुओं का मर जाना, पेट की बीमारी, सुनने बोलने में बाधा, चर्म रोग, आंखों की बीमारी प्रजनन क्षमता का ह्रास और न्यूरोलोजिकल बीमारियां इस इलाके में बुरी तरह पांव पसार चुकी हैं। बच्चा, बूढा, जवान, औरत, मर्द-कोई भी इस जानलेवा हमले से नहीं बचा है। लोगों के खून में सीसा, पारा और आरसेनिक बह रहा है।

दिल्ली स्थित सेन्टर फॅार साइन्स एण्ड इनवायर्नमेन्ट ने 2011 में उस इलाके के अनाज, मछली, मिट्टी और पानी का नमूना लेकर उनकी जांच की। साथ ही वहां के निवासियों के खून, नाखून और बाल का भी नमूना इकट्ठा किया। जांच से पता चला कि उन नमूनों में भारी मात्रा में सीसा, पारा, फ्लोराइड, आरसेनिक और क्रोमियम मौजूद है। केंद्रीय प्रदूषण प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (लखनऊ) ने 2000-2001 में अपनी रिपोर्ट में बताया था कि इस इलाके में पारे के चलते घुलनेवाला जहर मानव निर्मित है और प्रदूषण के लिये बिजली उत्पादन संयंत्र जिम्मेदार हैं। इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्सिकोलोजी ने 1998 में ही 1200 लोगों में पारा विषैलेपन की जांच की थी और पाया था कि 500 कण प्रति अरब जहर खून में मौजूद है जबकि 5.8 कण प्रति अरब की सीमा है। सब्जी, मछली और पीने के पानी में भी जहर मौजूद था। इस रिपोर्ट को कभी सार्वजनिक नहीं किया गया। ऐसी ही जांच रिपोर्ट कई अन्य संस्थसानों ने भी प्रस्तुत की और सबने ही इस बात की पुष्टि की कि इस इलाके की जिन्दगी में खतरनाक जहर घुल चुका है।

जाहिर है कि इस जहर से वहां के लोगों की जिन्दगी तबाह हो रही है। लोग मर रहे हैं या मौत से भी बदतर हालात में धकेले जा रहे हैं, जबकि इस इलाके के अधिकारी तथा केन्द्र और राज्य सरकार मौन साधे तमाशा देख रही है।

इस इलाके में 'विकास की लहर' 1962 में आयी जब रिहन्द बांध बना, बिजली उत्पादन शुरू हुआ, खादानों से कोयला और चुना पत्थड़ की खुदाई शुरू हुई। इस मूलभूत ढांचे ने उद्योगपतियों को आकर्षित किया। हिन्डालको (बिरला) ने एल्यूमिनियम संयंत्र लगाया, कनोडिया केमिकल ने कास्टीक सोडा का संयंत्र लगाया। उत्तर प्रदेश सरकार की डालासिमेंट फैक्टरी लगी। यह सिलसिला आगे बढता रहा और एनटीपीसी, लान्को, जेपी, आदित्य बिरला समूह का भी यहां अवतरण हुआ। इसी के साथ स्टोन क्रसिंग मशीन और चूना पत्थड़ खदानों का भी तांता लग गया। आज सोनभद्र में हर रोज 12 लाख टन कोयला जलता है, जो कार्बन, सल्फर, नाईट्रोजन, ऑक्साइड , फ्लोराइड हवा में घोलता रहता है और आस-पास राख के ढेर लगता रहता है। बरसात में बहकर प्रदूषित पानी रिहन्द के जलाशयों में जमा होता है, जो इसके निवासियों का एकमात्र जीवन स्रोत है। किसी भी खदान या संयंत्र में पर्यावरण नियंत्रण की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। प्रदूषण चरम पर है, फ़िर भी नये-नये खदान और ताप विद्युत संयंत्रों के लिये जमीन अधिग्रहण जारी है। जाहिर है कि इस पर रोक लगाने के बजाय विकास के नाम पर इसे बेलगाम बढावा दिया जा रहा है।

इस इलाके के सार्वजनिक या निजी उद्यमों के अधिकारी या तो इस जानलेवा प्रदूषण को सिरे से खारिज कर देते हैं या इसे विकास की तुच्छ और अनिवार्य कीमत बताकर बात को रफ़ा-दफ़ा कर देते हैं। सबके पास इस बात को सही ठहरानेवाली अपनी जांच रिपोर्ट है, जिसमें सब कुछ चकाचक है। यहां तक कि जल बोर्ड और प्रदूषण बोर्ड के अधिकारी उनके सुर में सुर मिलाते हुए कहते हैं कि पानी में प्रदूषण नहीं है और कुछ इलाके में है भी, तो सीमा के भीतर है। वे इस बात को भी नकारते हैं कि यहां के उद्योगों में पर्यावरण नियंत्रण की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। लेकिन इस इलाके की जमीनी हकीकत इन अधिकारियों की गलत बयानी से तो नहीं बदल जायेगी।

जहां तक राजनीतिक पार्टियों की बात है, यह स्वीकार करती हैं कि प्रदूषण अपने चरम पर है आर इसके चलते यकृत, गुर्दे में कैंसर जैसी बीमारियां फैल रही हैं, लेकिन इसके लिये वे अपने विरोधियों पर जिम्मेदारी डालकर पल्ला झाड़ते हैं। इलाके के भाजपा नेता इसके लिये समाजवादी पार्टी को दोष देते हैं। वे कहते हैं कि हमने कई बार सवाल उठाया, लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई। सवाल यह है कि इतनी भयावह स्थिति के खिलाफ़ किसी भी पार्टी ने जन आन्दोलन क्यों नहीं खड़ा किया? कारण स्पष्ट है कि सभी पार्टियां अपने विरोधियों पर उद्योगपतियों के साथ मिलीभगत का आरोप लगाती है। यानी सब को राजनीति के लिये चन्दा चाहिए। फ़िर भला कौन मुंह खोले?

अभी हाल ही में जब इस इलाके के पर्यावरण विनाश की जानकारी नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल के सामने रखी गयी, तो उसने सरकार से उस इलाके के लोगों को साफ पेय जल आपूर्ति का आदेश दिया। लेकिन इलाके के लोगों का कहना है कि पानी साफ़ करने के संयंत्र देख-रेख के आभाव में खराब पड़े हैं। सवाल यह है कि इस समस्या को जड़ से मिटाने के बजाय उसके सतही समाधान कितने कारगर हो पायेंगे?

इस इलाके में पैदा हो रही बिजली लोगों की जिंदगी रौशन कर रही है। जबकि यहां के निवासियों की जिन्दगी अंधकारमय हो गयी है। विकास के नाम पर मुट्ठी-भर लोगों की खुशहाली की कीमत औद्योगिक इलाके के आम लोगों को घातक बिमारियों और मौत के रूप में चुकानी पड़ती है। आज जब विकास को आलोचना से परे बना दिया गया, इसके मार्ग की हर बाधा को हटाया जा रहा है, पर्यावरण की बात करना विकास विरोधी और देशद्रोही होने का पर्याय बना दिया गया है, तब इस महाविनाशकारी विकास के ऊपर सवाल उठाना अनिवार्य हो जाता है।

-देश-विदेश